संपादकीय जागरण

रविवार, 7 जनवरी, 2018 : माघ कृष्ण 6 वि. 2074

विद्यार्थी तभी सफल होगा जब विद्या को व्यवहार में आत्मसात करे

धांधली की सजा

राजद नेता लालू प्रसाद यादव को चारा घोटाले के एक और मामले में दोषी करार दिए जाने के बाद उन्हें सजा सुनाया जाना एक औपचारिकता ही अधिक थी, लेकिन साढ़े तीन साल की सजा उनके अपराध की गंभीरता को ही बयान कर रही है। इस सजा के साथ ही लालू यादव की मुश्किलें और बढ़ती हुई दिख रही हैं, क्योंकि अब उनके लिए जमानत हासिल करना आसान नहीं होगा और यदि ऐसा हो भी जाए तो जल्द ही इस घोटाले के कुछ और मामले उनकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। उचित यह होगा कि चारा घोटाले के शेष मामलों का निपटारा जल्द से जल्द हो, क्योंकि इस मसले पर जांच और अदालती कार्रवाई में पहले ही बहुत अधिक देरी हो चुकी है। यह देरी इसी कहावत को चरितार्थ कर रही है कि न्याय में देरी न्याय न होने के समान है। इसकी भी अनदेखी नहीं की जा सकती कि चारा घोटाले के मामलों की सुनवाई में देरी का लाभ उठाकर लालू यादव न केवल अपनी राजनीति चमकाने में सफल रहे, बल्कि चुनावी लाभ लेने में भी। किसी को इस पर न केवल चिंतित होना चाहिए, बल्कि जवाबदेह भी बनना चाहिए कि जो घोटाला 1996 में सामने आया था और पहली चार्जशीट 1997 में दाखिल हुई थी उसके दूसरे मामले का निपटारा अब हो सका है। लगभग दो दशक की इस देरी को देखते हुए यह कहकर संतोष व्यक्त नहीं किया जा सकता कि आखिरकार न्याय हुआ। इसलिए और भी नहीं, क्योंकि अभी निचली अदालतों ने ही फैसले दिए हैं। कोई नहीं जानता कि चारा घोटाले के मामले ऊंची अदालतों तक कब पहुंचेंगे।

अच्छा यह होगा कि जिन दो मामलों में फैसला आ चुका है उनका ऊंची अदालतों से यथाशीघ्र निष्पादन हो, क्योंकि यह किसी से छिपा नहीं कि जिस पहले मामले में लालू यादव को सजा के बाद जेल जाना पड़ा था उसे उन्होंने राजनीतिक तौर पर जमकर भुनाया। यदि फिर से ऐसी कोई नौबत आती है अर्थात लालू यादव अपने जेल जाने की चुनावी फसल काटने में सफल होते हैं तो यह न्याय का उपहास ही होगा। इस पर आश्चर्य नहीं कि सजा सुनाए जाने के बाद लालू यादव के साथ-साथ उनके समर्थक एवं सहयोगी यही दुष्प्रचार करने में लगे हुए हैं कि सामाजिक न्याय की लड़ाई लड़ने के कारण उन्हें यह सजा मिली है। इतना ही नहीं दबे-छिपे स्वरों से यह भी कहने की कोशिश हो रही है कि पिछड़े लोगों की लड़ाई लड़ने के कारण उन्हें गलत तरीके से फंसाया गया। यह निरा झूठ ही है और एक तरह से न्यायपालिका की अवमानना भी। अच्छा हुआ कि ऐसे कुछ बयानों का लालू को सजा सुनाने वाली रांची की सीबीआइ अदालत ने संज्ञान लिया था, लेकिन केवल इतना ही पर्याप्त नहीं। इस दुष्प्रचार को हर स्तर पर खारिज करने की जरूरत है। सच्चाई यह है कि लालू यादव एवं अन्य लोग अपने आपराधिक आचरण एवं सरकारी खजाने की खुली लूट के कारण दंडित किए गए हैं। इस संदर्भ में इस तथ्य की भी अनदेखी नहीं की जा सकती कि लालू यादव ने सामाजिक न्याय के नाम पर किस तरह अपने कुनबे को आगे बढ़ाया और भ्रष्ट तौर-तरीकों में भी लिप्त रहे।

संवाद बनाए रखें

लखनऊ में एक प्रेमी युगल ने पहले हाथ की नस काटी और फिर एक अपार्टमेंट की पांचवीं मंजिल से कूदकर जान दे दी। युवक 18 साल का था और एनिमेशन मीडिया का कोर्स कर रहा था। युवती बीस साल की थी और बीएससी तृतीय वर्ष में पढ़ाई कर रही थी। दो होनहारों के दुनिया से इस तरह विदा होने से दोनों के परिवारों पर गम का पहाड़ टूट पड़ा है। दोनों ही परिवारों ने अपने बच्चों से बड़ी-बड़ी उम्मीदें पाल रखी होंगी, उनके सपनों को यूं तोड़ कर इस युगल का चले जाना बहुत दुर्भाग्यपूर्ण है। भावना में बहकर किये गए उनके एक काम ने दो परिवारों को जीवन भर का दुख दे दिया। माना जाता है कि युवा उम्र के इस पड़ाव पर आकर मानसिक रूप से परिपक्व हो जाते हैं। वैसे भी वोट देने का अधिकार इस उम्र में आकर मिल जाता है। वैसे अब यह धारणा बन चुकी है कि आज का युवा ज्यादा परिपक्व, जुझारू, दूरदर्शी, ज्यादा व्यावहारिक, अपने कॅरियर के प्रति सजग हो चुका है, लेकिन बीच-बीच में ऐसी घटनाएं समाज को बहुत कुछ सोचने के लिए बाध्य कर देती हैं।

जब बड़े बच्चों पर भरोसा करेंगे तो बच्चे भी कुछ कहने की हिम्मत जुटा सकेंगे। तकनीक के इस युग में संवाद और भी आवश्यक हो गया है

यह कि एक तरफ युवा पढ़ाई पूरी कर कॅरियर के बारे में सोचते हैं। शादी उनकी निचली प्राथमिकता में होती है। वहीं इस युगल के लिए अपना नादान प्यार ही सबकुछ था, जिसके लिए दुनिया छोड़ दी। बच्चों की किसी भी समस्या को बहुत ही संवेदनशील तरीके से सुलझाने की आवश्यकता होती है। इस मामले में जरा सी भी चूक घातक हो सकती है। दोनों पक्षों में संवाद होते रहना चाहिए। जाहिर है पहल अभिभावकों को करनी होगी। उन्हें अपने बच्चों को समझाना होगा कि वे शेयर करना सीखें। मन की बात कहना सीखें। बच्चे कुछ कहना चाहें तो घर के बड़ों को तैश में नहीं आ जाना चाहिए।

कह के रहेंगे

माधव जोशी

जागरण जनमत

कल का परिणाम

क्या आम आदमी पार्टी ने कुमार विश्वास को राज्यसभा का टिकट नहीं देकर सही किया है?

आज का सवाल

क्या लालू यादव को सजा मिलने से राजद की राजनीतिक संभावनाएं प्रभावित होंगी?

अपनी राय और अधिक लोगों तक पहुंचाने के लिए अपने मोबाइल के मैसेज बॉक्स में जाकर POLL लिखें, स्पेस देकर Y, N या C लिखकर 57272 पर भेजें
Y -हां, N-नहीं, C-कह नहीं सकते

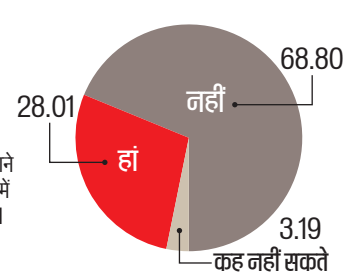

परिणाम एसएमएस से प्राप्त नतीजों के साथ जागरण इंटरनेट संस्करण के पाठकों का मत है। सभी आंकड़े प्रतिशत में।

जातिवादी राजनीति का जहर

संजय गुप्त

सभी को यह समझना ही होगा कि जाति के नाम पर की जाने वाली राजनीति देश को सामाजिक विभाजन और अशांति की ओर ही ले जाएगी

पुणे के पास भीमा-कोरेगांव नामक स्थान पर दो सौ साल पहले हुए एक युद्ध की याद पर आयोजित समारोह इस वर्ष इसलिए राष्ट्रीय स्तर पर सुर्खियां बना, क्योंकि प्रति वर्ष एक जनवरी को आयोजित होने वाले इस समारोह में शामिल होने जा रहे दलितों के साथ कुछ लोगों ने मारपीट की। इस दौरान वाहनों में आगजनी के साथ जो हिंसा हुई उसमें एक युवक की जान भी चली गई। दो सौ साल पहले यह युद्ध अंग्रेजों की सेना और पेशवाओं के बीच हुआ था। इस युद्ध में दलित और विशेष रूप से महार जाति के लोग अंग्रेजों की सेना का हिस्सा थे। इस युद्ध में पेशवाओं को हार मिली और उनके शासन का अंत हुआ। महाराष्ट्र के दलित इस युद्ध का स्मरण दशकों से करते चले आ रहे हैं, लेकिन इस बार भीमा-कोरेगांव में कहीं अधिक संख्या में भीड़ जुटी। एक जनवरी को इस आयोजन के पहले पुणे में एक और कार्यक्रम हुआ, जिसमें गुजरात के दलित नेता जिग्नेश मेवाणी, उमर खालिद समेत अन्य अनेक लोगों ने हिस्सा लिया। माना जाता है कि इस कार्यक्रम के दौरान जो भड़काऊ भाषण हुए उसके दुष्परिणाम स्वरूप ही भीमा-कोरेगांव में हिंसा भड़की। एक अन्य कारण यह बताया जा रहा है कि भीमा-कोरेगांव के पास दलितों और मराठाओं के बीच एक विवाद के चलते जो तनाव पैदा हुआ वह इस हिंसा का कारण बना।

भीमा-कोरेगांव में हिंसा के जवाब में प्रकाश अंबेडकर और अन्य दलित नेताओं ने तीन जनवरी को महाराष्ट्र बंद का आयोजन किया। बंद के दौरान मुंबई, पुणे और औरंगाबाद समेत महाराष्ट्र के करीब 13 जिलों में उत्पात मचाया गया। एक तरह से भीमा-कोरेगांव में हुई हिंसा का जवाब हिंसक तरीके से ही दिया गया। महाराष्ट्र के मुख्यमंत्री ने भीमा-कोरेगांव में हुई हिंसा की न्यायिक जांच के आदेश दिए हैं, लेकिन इसके बावजूद कई दलित संगठन इस घटना के बहाने अपनी राजनीति चमकाने में लगे हुए हैं। यही काम अन्य अनेक राजनेता भी करने में लगे हुए हैं। यही कारण है कि आने वाले दिनों में महाराष्ट्र की घटनाओं को लेकर देश के अन्य हिस्सों में भी जातिवादी राजनीति को हवा देने की आशंका बढ़ गई है। इस आशंका के चलते समाज के सभी वर्गों को जाति का सहारा लेकर राजनीति करने वालों और इस क्रम में सामाजिक वैमनस्य बढ़ाने वाले नेताओं से सावधान रहना होगा।

इसमें कोई दो राय नहीं हो सकती कि महाराष्ट्र की घटनाओं ने इस राज्य के साथ-साथ देश के अन्य हिस्सों में भी सामाजिक ताने-बाने को नुकसान पहुंचाने का काम किया है। यह बेहद दुर्भाग्यपूर्ण है कि सत्तर साल बाद भी देश में जाति आधारित राजनीति का सिलसिला कायम है। जाति आधारित राजनीति विभाजनकारी राजनीति के अलावा और कुछ नहीं। हमारे देश में कभी जाति के आधार पर सामाजिक विभाजन की राजनीति की जाती है तो कभी संप्रदाय के नाम पर की जाने वाली राजनीति के जरिये। यह राजनीति किस तरह झूठ और छल-छद्म पर भी आधारित है, इसका प्रमाण कुछ दलों की ओर से भाजपा पर यह ठप्पा लगाए जाने से मिलता है कि वह अगड़ों की

अवधेश राजपूत

पार्टी है। सच्चाई यह है कि सबसे ज्यादा दलित-आदिवासी सांसद-विधायक भाजपा में ही हैं। जातीय विभाजन अथवा वैमनस्य से ग्रस्त कोई भी समाज आगे नहीं बढ़ सकता। हालांकि इससे सभी परिचित हैं कि जाति एवं संप्रदाय की आड़ में की जाने वाली राजनीति किस तरह समाज और देश को कमजोर करने का काम करती है, लेकिन इसके बावजूद रह-रहकर ऐसी राजनीति देखने को मिलती है। कई बार तो यह राजनीति सामाजिक ढांचे को कहीं अधिक नुकसान पहुंचाती है। फौरी तौर पर इस नुकसान का लाभ भले ही जाति-संप्रदाय की राजनीति करने वालों को मिलता हो, लेकिन अंततः उनके पीछे खड़े होने वालों को ही नुकसान उठाना पड़ता है। जब भीमा-कोरेगांव की घटना के बाद कोशिश इस बात के लिए होनी चाहिए थी कि दलितों और मराठाओं अथवा दलितों एवं जातीय समूहों के बीच वैमनस्य न बढ़ने पाए तब ठीक इसका उल्टा ही किया गया। सबसे दुर्भाग्यपूर्ण यह रहा कि यह काम संसद में भी होता नजर आया जब नेताओं ने भीमा-कोरेगांव की घटना का जिक्र कर एक-दूसरे पर दोषारोपण किया।

भारतीय समाज को जाति और संप्रदाय के बीच बांटकर अपना उल्लू सीधा करने और देश को कमजोर करने का काम नया नहीं है। यह काम अंग्रेजों के समय से ही जारी है। अंग्रेज भारतीय समाज को जातियों के बीच विभाजित कर अपना स्वार्थ सिद्ध करने में इसलिए सफल हुए, क्योंकि भारतीय समाज जातिवाद से जकड़ा हुआ था। निश्चित रूप से कोई भी देश ऐसा नहीं जहां गरीबी न हो, लेकिन यह भी सच है कि गरीबी जाति-मजहब तक ही केंद्रित नहीं।

भारत में विशेष तौर पर यह देखने को मिल रहा है कि गरीबी को जाति विशेष अथवा संप्रदाय विशेष से जोड़कर देखा जाता है। एक समय ऐसा था जब जाति विशेष के लोग गरीबी से कहीं ज्यादा ग्रस्त थे, लेकिन पिछले सत्तर वर्षों में स्थितियां बदली हैं। यह ठीक है कि गरीबी और पिछड़ेपन को दूर करने के लिए अभी भी बहुत कुछ किए जाने की आवश्यकता है, लेकिन इस आवश्यकता की पूर्ति तभी हो सकती है जब गरीबी को जाति-वर्ग से जोड़कर राजनीति करने से बचा जाए। दुर्भाग्य से फिलहाल ऐसा ही हो रहा है। इस काम में आरक्षण का इस्तेमाल एक हथियार की तरह से किया जा रहा है। एक समय आरक्षण वंचित-शोषित एवं पिछड़े तबकों को मुख्यधारा में लाने का विशेष उपाय था, लेकिन अब वह स्कूलों में दाखिले लेने और सरकारी नौकरियां पाने का जरिया अधिक बन गया है। यही कारण है कि अब कुछ वैसे जातीय समूह भी आरक्षण की मांग करने लगे हैं जो न तो सामाजिक रूप से पिछड़े हैं और न ही शैक्षणिक रूप से। ऐसे जातीय समूह आरक्षण पाने के आधारों को पूरा नहीं करते, लेकिन इनके नेता न केवल खुद को आरक्षण का हकदार बता रहे हैं, बल्कि इसके लिए सड़कों पर उतरने और हिंसा का सहारा भी ले रहे हैं। यह किसी से छिपा नहीं कि पिछले कुछ वर्षों में जाट, गुर्जर अथवा पाटीदार समाज के नेताओं ने आरक्षण की मांग को लेकर किस तरह हिंसा का सहारा लिया। कायदे से तो देश के राजनीतिक नेतृत्व को आरक्षण हासिल करने के इन तरीकों की निंदा करनी चाहिए, लेकिन देखने में यही आ रहा है कि वोट बैंक की राजनीति के चलते आरक्षण की करीब-करीब हर मांग का कुछ राजनीतिक दल समर्थन करने के लिए आगे आ जाते हैं।

जातिवादी राजनीति किस तरह फिर से सिर उठाती दिख रही है, इसका एक प्रमाण गुजरात के चुनावों के दौरान तब मिला था जब कांग्रेस ने जाति विशेष की राजनीति करने वाले नेताओं का समर्थन लेने में कोई संकोच नहीं किया। वैसे तो देश में कोई भी दल ऐसा नहीं जो किसी न किसी स्तर पर जातिवाद का सहारा लेकर राजनीति न करता हो, लेकिन समस्या तब बढ़ जाती है जब इसके सहारे चुनावी लाभ लेने की कोशिश में जातीय वैमनस्य फैलाने में भी संकोच नहीं किया जाता। इसमें संदेह है कि दल जातिवादी राजनीति के दुष्परिणामों से चेतेंगे, लेकिन कम से कम समाज को तो यह समझना ही होगा कि जाति के नाम पर की जाने वाली राजनीति और एक जातीय खेमे को दूसरे जातीय खेमे के खिलाफ खड़ा करने की कोशिश देश को सामाजिक विभाजन और अशांति की ओर ही ले जाएगी और निःसंदेह यह वह रास्ता है जो समाज और देश को अवनति की ओर ले जाएगा।

response@jagran.com

फर्जी नाम-पहचान का सुख

हास्य-व्यंग्य

निर्मल गुप्त

फेसबुक यदि आधार से जुड़ा तो पोल खुल जाएगी कि जिसे वे षोडशी समझ प्यार बढ़ा रहे थे वह पड़ोसी कल्लू पतंगफरोश निकला

हाल में दो बड़ी बातें हुईं। अलग-अलग आकार-प्रकार की दो उदास सूचनाएं मिलीं। एक खबर तो यह रही कि छोटी बचत पर ब्याज दर घटी और दूसरी यह कि फेसबुक खाता खोलने के लिए अब आधार जरूरी हो सकता है। शायद इससे आधार विरोधी तबके को उसके खिलाफ आंदोलन को धार देने के लिए एक और मुद्दा मिल जाए। खैर, ब्याज दर में घटौती को लेकर अधिकांश लोग यह सोचकर अधिक चिंतित नहीं हुए कि 'माया महाठगिनी हम जानी। धन तो निरी मोहमाया है जी।' लोगों ने इसे मुल्क के सर्वांगीण विकास में अपना किंचित योगदान या प्रारब्ध मानकर चुप्पी साध ली। वैसे भी सयाने बता चुके हैं कि आशंकाओं से मुंह मोड़ लेने से आगामी हानिकारक दंश का असर कुछ कम हो जाता है। कभी-कभी आसन्न विपत्तियां टल भी जाती हैं। इस सत्य को टिटहरी और शतुरमुर्ग भली प्रकार पहले से ही जानते और मानते रहे हैं। बेबसी में मौन हमेशा ही बड़ा कारगर होता है। ऐतिहासिक चालाक चुप्पियों के हुनरमंद इस्तेमाल की वीरगाथाओं से इतिहास के पन्ने भरे पड़े हैं। उपयुक्त समय पर धारण की गई उचित खामोशी अंततः आपातकाल की त्रासदी को भी अनुशासन पर्व में तब्दील करती देखी सुनी गई है।

दूसरी ओर यदि फेसबुक खाते को आधार से जोड़ना अनिवार्य हुआ तो इससे तमाम लोगों का मिजाज बिगड़ सकता है। इसकी आशंका ने ही किस्म-किस्म के विमर्शवादियों को हिलाकर रख दिया है। उन्हें लग रहा है कि हाय अब क्या होगा, उनका तो सारा मेकअप ही सरेआम धुल जायेगा। आधार वाले अंगूठे की छाप तो उनका पूरा कच्चा- चिट्ठा खोलकर रख देगी। सबसे बड़ी बात यह है कि फेसबुक पर जब पिंकी की जगह बंता दिखेगा तो उसे कौन संता देखना चाहेगा? चुटकुले की दुनिया के हंसोड़ संता-बंता इस तरह के मजाक को शायद ही बर्दाश्त कर पाएं। सब जानते हैं कि अभी तक तो कोई रिंकी सोशल मीडिया पर 'हैलो' भी बोलती है तो कुछ ही समय में उसकी हिमायत में हजारों 'वाह' आननफानन में आ धमकती हैं। जबकि गंभीर टिप्पणियां कद्रदानों की बाट जोहती रहती हैं। पहले सरेआम हैलो-हाय, ओके-बाय आदि बोलने भर से सुंदरियां बदनाम हो जाया करती थीं। पर अब वक्त बदल चुका है। अब तो 'हैलो' सुनते ही उसके इर्दगिर्द दिल के निशान वाले लाइक्स की स्टेट्स पर इतनी गहमागहमी हो जाती है कि खुले बाजार में नर्म मासूम दिलों की किल्लत हो जाने की बात सुनी गई है। वाकई, आजकल दिल देह के भीतर कम सोशल मीडिया पर अधिक धड़कते पाए जाते हैं। यही जगह दिल के विपणन का सबसे सस्ता और सहज उपलब्ध वायदा बाजार है।

आभासी दुनिया पर शिनाख्त बदलने का जो खेल होता है, वह बेमिसाल है। लाइक्स बटोरने के फेर में तमाम लड़के लड़कियां बने फिरते हैं। हालांकि वह रोटी के उस खेल से इतर होता है, जिसकी निशानदेही कवि धूमिल ने कभी की थी। यह रहस्य अब उजागर हो चुका है कि रोटी बेलने, उसे खाने और उससे खेलने वालों के अलावा एक तबका ऐसा भी है जो दिल को इधर-उधर लगातार चिपकाते रहने में सदैव सुकून पाता है। अभी तो निजी जानकारी में थोड़ी-सी हेराफेरी करके कोई भी सरलता के साथ परकाया प्रवेश कर सकता है। कोई भी लल्लू-जगधर बिग बी या किंग खान बन सकता है। या फिर कोई भी ऐश्वर्या बन सकती है। मोहल्ला स्तर का छिछोरा नेशनल लेवल का दरवेश बन जाता है। पहचान में जरा सी घालमेल और प्रोफाइल पिक में थोड़ी सी फोटोशॉप आदमी को क्या से क्या बना सकती है। देखते ही देखते जेंडर तक बदला जा सकता है। रूप रंग रूपांतरित हो सकता है। बीत गया वक्त और रीत गया यौवन पूरी आन-बान-शान के साथ यकायक वापस लौट सकता है। वॉटर ऑफ इंडिया वाले जादुई मटके में से कलकल करता जल बार-बार उलीचे जाने के बावजूद बहता ही जाता है।

वास्तविकता की जमीन बड़ी बेरंग और खुरदरी होती है। उस पर नंगे पांव चलते हुए यथार्थवादी कंकड़ बेतहाशा चुभते हैं। फेसबुक ही वह उड़न खटोला है जो अपने खाताधारक को उसकी पहचान और समय के आरपार ले जाता है। इसके जरिये ही साठ पार का आदमी वयसंधि की दहलीज पर खड़े हठीले युवकोचित सपने इत्मिनान से देख लेता है और जीवन के पचास से अधिक बसंत निहार चुकी चिरयुवती एकदम हाईफाई टीनएजर टाइप की बन जाती है।

फेसबुक खाता यदि आधार से जुड़ा तब तो सारी पोल ही खुलकर रह जाएगी। सारे किए धरे पर पानी ही फिर जाएगा। पता लगेगा कि जिसे वे षोडशी समझ प्यार और मनुहार के पेंच लड़ाने में रात-दिन मशगूल रहे, वह तो दरअसल कल्लू पतंगफरोश निकला जो गलाकाट चाइनीज मांझा और सस्ती, टिकाऊ व सुंदर पतंग बाजार में आ जाने के कारण लगभग बेरोजगार हो जाने की स्थिति के करीब है। वह अब या तो फेसबुक पर तरह तरह के भेष भरता है या तिमंजले पर चढ़कर अपने कबूतर उड़ाता और दूसरों के परिंदों को फंसाता है। ब्याज दर घटे तो घट जाए। माया भले मोहक हो, लेकिन है तो आनी जानी ही ना। आधार के जरिये मौज मस्ती के मूलधन में तो कम से कम कोई नाहक सेंधमारी न करे।

response@jagran.com

ऊर्जा

सच्ची मुक्ति

मुक्ति के संबंध में लोगों के मन में बहुत अधिक भ्रांति समाई है। भक्ति का विषय आते ही धार्मिक विषय की चर्चा करने वाले लोगों का कथन होता है कि अरे हमें मुक्ति से क्या काम। मुक्ति हो जाने से तो हम परमात्मा में ऐसे विलीन हो जाएंगे जैसे पानी की बूंद समुद्र के अथाह जल में विलीन होकर अपना अस्तित्व समाप्त कर देती है। फिर उसका कुछ अता-पता नहीं चलता। इसलिए हमें मुक्ति नहीं चाहिए। हम तो बार-बार इस संसार में आना चाहते हैं। संसार में आकर हमें तो सिर्फ भगवान की भक्ति करने से ही मतलब है। इसी प्रकार की धारणा रखने वाले सत्य को नहीं जानते। परमात्मा की भक्ति करने के लिए मुक्ति को जानना व समझना नितांत आवश्यक है। मुक्ति को समझ लेने के बाद ही सच्ची भक्ति की प्रक्रिया प्रारंभ होती है। इसे इस प्रकार समझना होगा जैसे कोई आपके दोनों हाथों को रस्सी से बांध दे और फिर आपके सामने स्वादिष्ट भोजन की थाली लाकर आपसे कहे कि लो थाली में रखा भोजन कर लो तो आप तुरंत कह उठोगे कि भाई पहले हमारे दोनों हाथों को तो खोल दो, तभी थाली में रखा भोजन किया जा सकेगा अर्थात बंधन में अभीष्ट की प्राप्ति करना संभव नहीं है। हम यहां लोगों को बंदीगृह में जाते हुए देखते हैं।

बंदीगृह में गया हुआ व्यक्ति बेचैन होकर छटपटाने लगता है। वह अपने निकटवर्ती लोगों से आग्रह करने लगता है कि हमें इस बंदीगृह से शीघ्र छुटकारा दिलवाओ। बंदीगृह से छूटने के बाद ही वह चैन की सांस ले पाता है। और अपने नियत कार्यों को कर पाता है। ठीक इसी प्रकार आप इस काल के बंदीगृह में आकर अदृश्य बंधन में बंध गए हैं। जगत में फंसकर यहां भांति-भांति की यातनाएं व कष्टों को सहन करने के लिए विवश हो रहे हो। इसलिए प्रथम हमें इस काल के जाल से मुक्ति प्राप्त करना परम आवश्यक है। मुक्ति के विषय को भलीभांति जान लेने के बाद ही भक्ति करना प्रारंभ किया जा सकता है। भक्ति और मुक्ति दोनों की प्राप्ति के लिए हमें ऐसे संत की खोज करनी पड़ेगी, जो पूर्णरूप से तत्वदर्शी हो। उन तत्वदर्शी संत के चरणों में बैठकर उनसे सद्उपदेश सुनना होगा। उन्हें अपना गुरु बनाकर उनसे विधिवत दीक्षा लेकर उनके ज्ञान के मर्म को समझना होगा। उनके बताए मार्ग पर चलकर फिर परमात्मा की सद्भक्ति प्रारंभ करनी होगी।

अशोक वाजपेयी

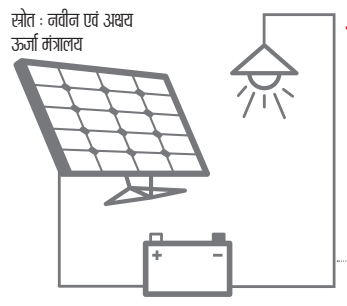

स्रोत : नवीन एवं अक्षय ऊर्जा मंत्रालय

तथ्य-कथ्य | **भारत में छतों पर सौर ऊर्जा प्लेट से बिजली उत्पादन**

वर्ष 2013 के बाद से 117 फीसद की बढ़त (आंकड़े मेगावाट में)

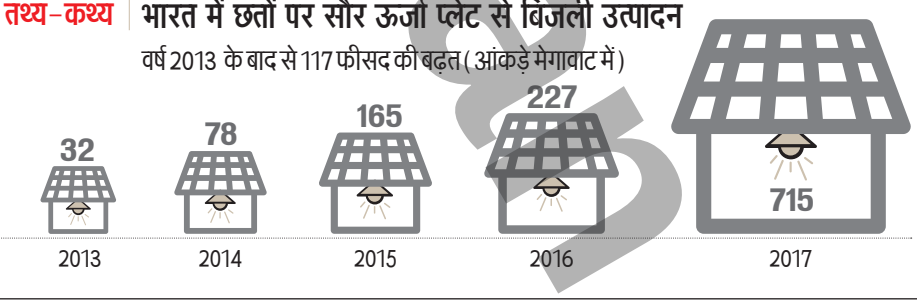

सुषमा की नसीहतें

राजनीतिक दबाव में राजनेता कुछ भी कर सकते हैं। नेताओं के अपने बयानों से पलटी खाने के तो कई उदाहरण हैं, लेकिन संसद के भीतर भी परस्पर विरोधी बयान की मिसाल भी देखने को मिली। यह राजनीतिक मजबूरी भी हो सकती है। संसद के शीतकालीन सत्र के आखिरी सप्ताह में हिंदी को लेकर सवाल-जवाब के दौर चले। संयुक्त राष्ट्र में हिंदी को आधिकारिक भाषा बनाए जाने की बात चली तो ज्यादातर लोगों ने सरकार पर तोहमत लगाना शुरू कर दिया, लेकिन विदेश मंत्री सुषमा स्वराज ने अपने जवाब से लगभग सभी को चुप करा दिया। पर कांग्रेस के सदस्य शशि थरूर ने हिंदी पर ही अपने सवाल अंग्रेजी में पूछना शुरू किया और हिंदी को संयुक्त राष्ट्र में अधिकृत किए जाने पर ही सवाल खड़े कर दिए। जिस पर सुषमा स्वराज ने उन्हें कड़ी नसीहतें दीं। उसके अगले ही दिन थरूर ने लोकसभा के पटल पर हिंदी में लिखा अपना दस्तावेज हिंदी में ही पढ़ते हुए रखा। सदन में इस पर खूब चुटकी ली गई।

छब्बे बनने की सियासत

गुजरात के चुनावी नतीजों के अंदरूनी आकलन के बाद कांग्रेस के सियासी गलियारों में इस कहावत 'चौबे गए छब्बे बनने दुबे बनकर' आ गए कि खूब चर्चा है। दरअसल यह कहावत चुनाव में शिकस्त खाने वाले सूबे के बड़े कांग्रेस नेताओं पर माकूल बैठ रही है। अर्जुन मोडवाडिया, शक्ति सिंह गोहिल, तुषार चौधरी और सिद्धार्थ पटेल जैसे पार्टी के सभी मुख्यमंत्री पद के दावेदारों के चुनावी मैदान में चित होने के सियासी पोस्टमार्टम में दिलचस्प पहलू सामने आए हैं। इसमें पाया गया है कि इन सभी ने कांग्रेस का सत्ता में आना तय मान लिया। इसीलिए सीएम पद की दावेदारी में अपना-अपना दावा मजबूत करने के जतन में अपने क्षेत्र का प्रचार छोड़ पार्टी के दूसरे उम्मीदवारों के लिए प्रचार करने का भी जोखिम उठाया। जबकि कांग्रेस हाईकमान के रणनीतिकारों ने इन नेताओं को अपनी सीट छोड़कर दूसरों के प्रचार में जाने का जोखिम नहीं उठाने की सलाह भी दी थी। पर सीएम दावेदारी में कहीं दावा कमजोर न पड़ जाए इन सबने एक दूसरे की देखादेखी यह जोखिम उठाया और दूसरों को जिताने की कोशिश में खुद चित हो गए। पार्टी का मानना है कि ये पांचों जीत जाते तो कांग्रेस का आंकड़ा 85 तक पहुंच जाता। फिर सियासत भी कुछ दूसरी होती। तभी कहा जा रहा कि चौबे छब्बे भी नहीं बने और पार्टी की हालत दुबे जैसी कर दी।

आंकड़े अलग-अलग

उच्च शिक्षा के क्षेत्र में चल रहे एक बड़े फर्जीवाड़े को सरकार ने पकड़ा है। यह फर्जीवाड़ा विश्वविद्यालय और कालेजों में पढ़ा रहे ऐसे प्रोफेसरों को लेकर है, जो एक साथ कई कालेजों में बतौर प्रोफेसर नौकरी कर रहे है और मोटी तनख्वाह भी ले रहे हैं। सरकार ने यह फर्जीवाड़ा प्रोफेसरों के सत्यापन के लिए कराए जा रहे आधार लिंकिंग के दौरान पकड़ा है। निश्चित ही यह मामला चौंकाने वाला है, लेकिन इसे लेकर सरकार और पार्टी की ओर से पेश किए गए दो अलग-अलग आंकड़े भी कम चौंकाने वाले नहीं है। सरकार की ओर से जहां ऐसे फर्जी प्रोफेसरों की संख्या करीब 80 हजार बताई गई, वहीं भाजपा की ओर से दावा किया गया है कि इस दौरान 1.30 लाख फर्जी प्रोफेसरों को पकड़ा गया है। अब किसे सही माना जाया? इसे लेकर अजीब दुविधा की स्थिति बन गई है।

राजरंग

बॉस के सामने बंधी घिग्घी

भाजपा अध्यक्ष अमित शाह के राज्य सभा में आने से सरकार के कुछ मंत्रियों की आफत बढ़ गई है। पीएम के साथ ही शाह को भी एक टफ टास्क मास्टर माना जाता है जो हमेशा अपने सहयोगियों को संसद में बेहतरीन प्रदर्शन करने के लिए प्रोत्साहित करते हैं। मंत्रियों और सांसदों के संसद के भीतर कार्य व्यवहार और विषय को लेकर इनकी तैयारियों पर शाह अब करीबी नजर रखने लगे हैं। ऐसे में अगर सदन में शाह बैठे हों तो किसी सवाल का जवाब देने या किसी बहस में पार्टी का पक्ष रखने को लेकर मंत्रियों के साथ ही सांसदों को भी खासी सतर्कता बरतनी पड़ रही है। पिछले दिनों एक बड़े केंद्रीय मंत्री जब विपक्षी दलों के सवालों का जवाब सही तरीके से नहीं दे पा रहे थे तो शाह ने सिर्फ उनकी तरफ देखा तो मंत्री महोदय थोड़ा अटपटा से गए।

ट्वीट-ट्वीट

जेपी आंदोलन को वंशवाद और भ्रष्टाचार के सवालों तक लाकर, हमारे आंदोलन का संसद में फूहड़ मजाक उड़ाने वाले लालू प्रसाद यादव को आखिर सजा हो गई। देर से पहुंची लोकतंत्र की सर्दी उन्हें मुबारक हो।

कुमार विश्वास@DrKumarVishwas

सरकार छोटी बचत योजनाओं में ब्याज घटाकर वरिष्ठ नागरिकों को भी एक तरह से शेयर बाजार में निवेश करने की ओर धकेल रही है जबकि शेयरों में निवेश एक हद तक जोखिम भरा है।

मिलिंद देवड़ा@milinddeora

आधार को दूसरी अन्य चीजों से जोड़ने की जुगत में लगने के बजाय पहले हमें दलितों को गैर-दलितों, मुसलमानों को हिंदुओं और भारतीयों को भारतीयों से जोड़ने पर जोर देना चाहिए। यह कहीं अधिक सार्थक होगा।

चेतन भगत@chetan_bhagat

कई वर्षों से मैं ऐसा करता आया हूं कि प्रत्येक संसद सत्र की समाप्ति के बाद सदन की कार्यवाही जितने समय के लिए बाधित रही, उतने समय के वेतन भत्ते काटने का अनुरोध करता हूं। निश्चित रूप से यह सांकेतिक कदम है, लेकिन मैं सार्थक संसदीय सुधारों की हिमायत करता हूं।

बैजयंत जय पांडा @PandaJay

जनपथ

काटें खटमल या लगे जाड़ा सारी रात,
कर्मों का फल भोगना पड़ता ही है भ्रात।
पड़ता ही है भ्रात और ना कोई 'चारा',
जिसका जैसा कर्म भरे वो ही बे-चारा।
लालू सुख-दुख आप कैदियों के संग बांटें,
लिट्टी-चोखा खाय जेल में दिन अब काटें।

-ओमप्रकाश तिवारी

संस्थापक-स्व. पूर्णचन्द्र गुप्त. पूर्व प्रधान संपादक-स्व.नरेन्द्र मोहन. संपादकीय निदेशक-महेन्द्र मोहन गुप्त. प्रधान संपादक-संजय गुप्त, नीतेन्द्र श्रीवास्तव द्वारा जागरण प्रकाशन लि. के लिए डी-210, 211, सेक्टर-63 नोएडा से मुद्रित एवं 501, आई.एन.एस. बिल्डिंग,रफी मार्ग, नई दिल्ली से प्रकाशित, संपादक (दिल्ली एनसीआर) -विष्णु प्रकाश त्रिपाठी*
दूरभाष : नई दिल्ली कार्यालय : 23359961-62, नोएडा कार्यालय : 0120-3915800, E-mail: delhi@nda.jagran.com, R.N.I. No 50755/90 * इस अंक में प्रकाशित समस्त समाचारों के चयन एवं संपादन हेतु पी.आर.बी. एक्ट के अंतर्गत उत्तरदायी। समस्त विवाद दिल्ली न्यायालय के अधीन ही होंगे। हवाई शुल्क अतिरिक्त। वर्ष 28 अंक 173